एक फ़ौजदारी वकील से बातचीत

जवाहर राजा

(ये जाने-माने फ़ौजदारी वकील हैं। फ़र्ज़ कीजिए इनका नाम विप्लव मेहरा है। पाइरेसी से जुड़े मामलों में भी इनकी दख़ल है। जवाहर राजा ने इनसे बातचीत की। पेश है उस बातचीत के प्रमुख अंश।)

हिन्दुस्तान में कॉपीराइट क़ानून के बारे में आपकी क्या राय है? अदालत में इसके तरह आने वाले मामलों का निपटारा किस प्रकार होता है?

ट्रेडमार्क क़ानून में हुए बदलावों के बाद कॉपीराईट और ट्रेडमार्क दोनों से संबंधित मुक़दमों में अब ट्रेडमार्क ऐक्ट के तहत ही मुक़दमा चलाया जाएगा। इसका एक तरीक़ा पुलिस के ज़रिए मुक़दमा चलाने का है। इकॉनमिक ऑफ़ेन्स विंग (इ ओ डब्लयू) के मार्फ़त। यहाँ बौद्धिक संपदा अधिकार/इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट डिविज़न का हेड पुलिस विभाग का एक सहायक कमिश्नर होता है। दिल्ली में पिछले कुछ सालों के दौरान हम निजी शिकायतें दाख़िल का सीआरपीसी के सेक्शन 156 (3) के तहत इन मामलों में मजिस्ट्रेट से पड़ताल के लिए आदेश हासिल करते आए हैं। नए ट्रेडमार्क ऐक्ट के बाद अब रजिस्ट्रार (ट्रेडमार्क्स) से मंजूरी हासिल करने की ज़रूरत नहीं रह गयी है। वैसे भी रजिस्ट्रार से यह मंजूरी हासिल करना आसान नहीं होता था और अकसर इस प्रक्रिया में काफ़ी समय खपाना पड़ता था। इसलिए अब ऐसी अनिवार्यताओं से बचते हुए सीधे मुक़दमा दाख़िल करना काफ़ी आसान हो गया है। देर से ही सही, लेकिन पिछले दो-तीन सालों के दौरान पुलिस महकमे ने भी इन मुक़दमों को थोड़ा गंभीरता से लेना शुरू किया है। पहले तो पाइरेसी से जुड़े मामलों में अकसर ही अपराधिक मुक़दमे जैसे दिवानी मुक़दमों, सिविल प्रक्रियाओं और निषेधाज्ञाओं के लिए नालिशों के ज़रिए कुछ ऐसे हालात तैयार करने की कोशिश रहती थी कि जिससे समझौते की स्थितियाँ बन पाएँ। कुछ ख़ास परिस्थितियों को छोड़ दें तो ऐसे मामलों ज़्यादातर मुआवज़ों और ऐसे लिखित आश्वासनों की माँग के लिए होते थे कि संबंधित व्यक्ति भविष्य में पाइरेसी के मामले में शामिल नहीं होगा। मालूम नहीं है ऐसे आश्वासनों का कुछ नतीजा होती भी है या नहीं? क्योंकि लोग तो नाम बदल कर अपनी कंपनियों के संविधान बदल कर, फ़र्में बदल कर और एक नए अवतार लेकर फिर से वही काम जारी रखते हैं।

फिर भी दीवानी और फ़ौजदारी प्रक्रियाओं के ज़रिए पाइरेसी रोकने और इन मामलों को एक प्रधान की

पंचायत में लाने का प्रयास रहता है। मेरे पास आँकड़े तो नहीं है लेकिन इतना कह सकता हूँ कि ये तमाम कार्यवाहियाँ पाइरेसी को रोकने की दिशा में हुआ करती हैं। पैरलल इम्पोर्टस (समानांतर आयात) के एक मामले में कुछ ऐसी ही कार्यवाही हमने भी की थी। एक काफ़ी मशहूर मल्टीनेशनल कंपनी हिन्दुस्तान में अपनी अकेली संबद्ध डिस्ट्रीब्यूटर शाखा के ज़रिए माल आयात करती थी। और एक ऐसा आदमी था जो शायद यूरोप में पैरेंट कंपनी से सीधे माल ख़रीद रहा था। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं है यूके या यूएसए से। सस्ते दर पर थोक में माल ख़रीद कर ये लोग बिना ड्यूटी दिए हुए हिन्दुस्तान में माल इम्पोर्ट करने में लगे हुए थे। मिसाल के लिए, ये लोग करते यूँ थे कि अगर किसी डिब्बे में बारह आइटम हैं तो ये लोग उसको एक आइटम दिखा कर आयात करते थे। अब इस तरह से ये लोग ड्यूटी तो बचाते ही थे, इनको ढेर सारी छूट भी मिलती थी क्योंकि माल तो ये सीधे पैरेंट कंपनी से थोक में ख़रीदा करते थे। अब विदेशी (पैरेंट) कंपनी को क्या पड़ी है कि उसका माल कहाँ जा रहा है, उसे तो अपना माल बेचने से मतलब है। यहाँ नक़ली माल न होने पर भी समानांतर आयात के चलते कॉपीराइट ऐक्ट का उल्लंघन हो रहा है। ऐसा काम आपराधिक ही कहा जाएगा। लेकिन ऐसे काम हाथ में लेना सबके बूते की बात नहीं है। हम लोगों को भी कुछ ख़ास तर्जुबा नहीं था, क्योंकि हम लोग भी बौद्धिक संपदा अधिकार मामलों के विशेषज्ञ नहीं थे। फिर हमने सोचा कि थोड़ा जोखिम लेते हैं। हमने एक दीवानी वकील की मदद से एक मुक़दमा दायर किया। मुक़दमा दाख़िल होने के बाद हम पुलिस के पास गए और उनसे कहा कि हमें कुछ लोगों के ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज़ करानी है। और हमारे पास 'टाइटल' नहीं है। ऐसा भी नहीं है क्योंकि हमारे पास कोर्ट का अंतरिम आदेश है। फिर इसका इस्तेमाल हम लोगों ने एक फ़ौजदारी मुक़दमा दायर करने के लिए किया जिसका नतीजा ये हुआ कि एक साल के भीतर ही सामानांतर आयात न के बराबर पहुँच गया। कहें कि अगर पहले 100 यूनिटें समानांतर आयात के मार्फ़त आ रही थीं तो बाद में सिर्फ़ 8-10 यूनिटें ही आने लगीं और ये बात कंपनी के उत्पाद की बढ़ी हुई बिक्री से ज़ाहिर हुई।

अब अनधिकृत कॉपियाँ बनाने वालों के साथ भी ऐसे ही लड़ा जा सकता है। जब हम अनधिकृत कॉपियों की बात करते हैं, तो इसमें दोनों तरह की कॉपियाँ शामिल हैं, ऐसी भी जो एक जैसी नज़र आती हैं और री-फ़िल्ड कॉपियाँ भी। 'सोनी' का बाहरी कवर लिया और उसमें कुछ भी भर दिया या ये भी हो सकता है कि पुराना 'सोनी' टेप का कवर ले कर उसको फिर से भर दिया। आप 'आफ़्टर-शेव' और 'परफ़्यूम' का भी उदाहरण ले सकते हैं। आप ने किसी ब्रैंड की आफ़्टर-शेव की शीशी ली और उसको दोबारा से भर के तैयार कर दिया। एक दूसरा पहलू भी है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती है। वही सारी चीज़ें जो तमाम बौद्धिक संपदा अधिकार क़ानूनों के दायरे में आती हैं, दूसरी तरफ तमाम उत्पाद शुल्क (एक्साइज़) और सीमा शुल्क (टैक्सेसन) क़ानूनों के दायरे में भी आती हैं। इसलिए इन पर क़ानूनी नियंत्रण ज़रूरी हो जाता है। हक़ीकत यह है कि क़ानून इसे दोनों, स्थानीय और केन्द्रिय बिक्री कर क़ानूनों, एक्साइज़ क़ानूनों और अगर कहीं इसमें आयात का भी तत्व शामिल है तो कस्टम्स क़ानूनों के ज़रिए नियंत्रित करता है। कॉपीराइट ऐक्ट के सेक्सन 53 ए में यह भी प्रावधान है कि कस्टम कलेक्टर भी इन मामलों में कार्यवाही कर सकते हैं। वैसे आम तौर पर वे ऐसा करते नहीं हैं लेकिन कुछेक मामलों में हमने ऐसा करने के लिए मजबूर किया जिसका नतीजा यह हुआ कि डॉक पर ही पाइरेटेड माल से भरे हुए पूरे के पूरे बक्से ज़ब्त कर लिए गए। ये एक बड़ा झटका है क्योंकि ऐसा करते हुए आप सीधे 'सोर्स' पर चोट करते हैं। हिन्दुस्तान में ज़्यादातर कार्यवाहियाँ तो खुदरा बेचने वाले और छोटे-मोटे वितरकों के ख़िलाफ़ ही हुआ करती हैं वैसे लोग जो बड़े पैमाने पर इस ख़रीद-बिक्री के काम में लगे होते हैं या वास्तव में आयात करते हैं या फिर ऐसी चीज़ें बनाते हैं उनके ख़िलाफ़ नहीं।

प्रश्न: लेकिन अगर हम फ़िल्म और म्यूज़िक पाइरेसी की बात करें, तो कुछ लोग इस विचार को भी

मानने वाले मिल जाएँगे कि हिन्दुस्तानी पाइरेसी एशियन (चाइनीज़) पाइरेसी से अलग है, क्योंकि यहाँ थोक में कॉपियाँ बनाने के बजाय छोटे-मोटे लोग और छोटी-छोटी दुकानें ऐसी कॉपियाँ बनाते और बेचते हैं।

मैं ऐसा नहीं मानता। मुझे लगता है कि यह काम दो स्तरों पर होता है। पहला छोटे स्तर पर और दूसरा बड़े स्तर पर। छोटे स्तर पर इसे देखना आसान होता है और इसीलिए आप इसे बड़े स्तर पर नहीं देख पाते हैं। आख़िर पाइरेसी कहाँ से शुरू होती है? देखिए पाइरेसी वहाँ से शुरू होती है जब आप के हाथों में किसी ऐसी चीज़ की अनधिकृत) कॉपी पहुँच जाती है जो अभी रिलीज़ भी नहीं हुई होती है। हाँ, मैं तो यक़ीनन इसे संगठित अपराध का हिस्सा मानता हूँ क्योंकि कोई आदमी कुछ कोशिशें कर के, कुछ 'निवेश' कर के उस चीज़ को हासिल करता है या हासिल करने की कोशिश करता है जो स्वयं 'निवेश' है। तब अंत में संभव है कि छोटे वितरकों का एक नेटवर्क हो लेकिन यह उस कड़ी का हिस्सा भर है, अगर किसी आदमी के पास कुछेक सौ कॉपियाँ मिलती हैं तो ये कोई अलहदा बात नहीं। मैं तो इस सोच से एकदम असहमत हूँ।

आपको मैं बता दूँ कि हिन्दुस्तान में अपराध थोड़ा अलग क़िस्म का है। यहाँ संगठित अपराध तो होते हैं लेकिन उतने नहीं जितना दूसरे क़रीबी समाजों में। हिन्दुस्तान में संगठित अपराधों का केन्द्र बम्बई और कुछ दूसरे शहर हैं। हिन्दुस्तान की बात होती है तो बॉम्बे का नाम इस मामले में सबसे पहले जुबान पर आता है। लेकिन संगठित अपराध कुछेक क्षेत्रों तक ही सीमित हैं। नारकोटिक्स का क्षेत्र है, वाइल्ड लाइफ़ ट्रेड का क्षेत्र है, कुछ हद तक 'कस्टम्स' भी था लेकिन ज़्यादा नहीं क्योंकि यहाँ भी कई सारे अकेले खिलाड़ी हैं। बुराई हिन्दुस्तान में उस तरह से संगठित नहीं है जैसे कि ये पश्चिमी समाजों में संगठित है। यहाँ खेल थोड़ा अलग क़िस्म का है। इसलिए यह कहना कि अपराध के लिए ज़रूरी अधिरचनाएँ यहाँ मौजूद नहीं है इस बात की तरफ़ भी इशारा करता है कि अपराध कैसा होगा।

हिन्दुस्तान में पाइरेसी की चौहद्दी क्या होगी। मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ। चलिए कुछ देर के लिए हम किताबों की बात करते हैं जिसका मुझे भी कुछ पर्सनल एक्सपीरियन्स है। किताबों की पाइरेसी में, आपको ऐसे लोग शामिल मिलेंगे ... 'यू नो दीज़ टेक्निकल बुक्स'। हाँ, तो इन 'टेक्निकल बुक्स' का स्रोत तो सीमित है लेकिन दिल्ली में नयी सड़क पर आपको ये किताबे, पुरानी, फ़ोटोकॉपी की हुई और छपी हुई बिकती और वितरित होती मिल जाएँगी। अब नयी सड़क के इलाक़े में ही दिल्ली के दूसरे संस्थानों जैसे आईआईटी और एम्स की सबसे ज़्यादा एजुकेशनल किताबें बिकती हैं। लेकिन इन लोगों के पास किताबों की ज़्यादा से ज़्यादा चार, पाँच, दस या सात हज़ार कॉपियाँ होती होंगी लेकिन बॉम्बे में पेपर बैक्स का जहाँ तक सवाल है, तो वहाँ लोगों के गोदामों में एक-एक किताब की 50 हज़ार से लेकर 80 हज़ार तक कॉपियाँ हुआ करती हैं। जब कोई भी कार्रवाई होती है तो आम तौर पर स्रोत को पहचानना या उसको पकड़ना आसान नहीं होता है। पकड़ा जाता है वो जो इस व्यापार की कड़ी होता है। इसलिए, मेरे हिसाब से तो मोटे तौर पर दो तरह की चीज़ें हैं 'स्मॉल चैप्स सेलिंग' और 'लार्ज चैप्स सेलिंग'।

मैं आपको एक दूसरा मज़ेदार उदाहरण बताता देता हूँ सीडी और वीडियो सीडी का। कुछ तो ऐसे लोग हैं जो फ़ैक्ट्रियाँ चलाते हैं, लेकिन इन फ़ैक्ट्रियों में व्यापक पैमाने पर उत्पादन होता है और फिर इनकी छोटी-छोटी इकाइयाँ होती हैं जो अंतिम तौर पर काम को अंजाम देती हैं। इसलिए यह पूरे तौर पर संभव है कि व्यापक पैमाने पर उत्पादन-कर्म दिल्ली से बाहर किसी फ़ैक्ट्री में हो जहाँ एक समय

में 30-40 हज़ार कॉपियाँ बनायी जाती हैं, लेकिन जब अंतिम काम का वक़्त होता है, जैसे इन-ले कार्ड्स डालना, कवरिंग या जहाँ से 'एक्चुअल डिस्ट्रीब्यूशन' होता है, या थोड़ा-बहुत कॉपीइंग तो वहीं होती है जहाँ रेड पड़ती हैं - जहाँ तक हम पहुँच पाते हैं। आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान में ऐसे ज़्यादातर मामलों में धर-पकड़ बहुत ही कम हुआ करती है। लेकिन जैसी चीज़ें दिखती हैं, जितनी बड़ी मात्रा में चीज़ें बिक़ती हैं उसको देख कर साफ़ तौर से बड़े पैमाने पर होने वाली नक़लनबीसी का अंदाज़ा लग जाता है। और मैं समझता हूँ कि यह साफ़ तौर से संगठित अपराध की श्रेणी में आता है।

आपके पास लोग पालिका या कहीं और पाइरेसी रुकवाने के लिए कार्रवाई के लिए आते हैं, तो आपको क्या लगता है, वो किस स्तर पर पाइरेसी रोकना चाहते हैं? छोटे ऑपरेटरों के स्तर पर या बड़े उत्पादकों के स्तर पर?

पिछले पाँच, सात या आठ सालों में मैंने जिन लोगों के साथ डील किया है उनमें से ज़्यादातर अपनी खोजबीन करने के बाद मेरे पास आते हैं। और ज़्यादातर मौक़ों पर उनकी खोजबीन डिस्ट्रीब्यूटरों से आगे नहीं जाती। कुछेक कंपनियों या कॉरपोरेशनों ने ही इससे आगे क़दम उठाया होगा या 'सोर्स' पर चोट किया होगा। जैसे, मैंने आपको समानांतर आयात वाला केस बताया जिसमें उन लोगों ने कस्टम ऑफ़िसरों से बात कर के माल को एयरपोर्ट पर ही रोकने की कोशिश की और इस तरह से कहीं न कहीं 'सोस' पर चोट की। नहीं तो ज़्यादातर लोग तो छोटे खुदरा विक्रेताओं और वितरकों को ही बेचने से रोकने की कोशिश किया करते हैं। वास्तव में, छोटे वितरकों को भी रोक पाना इतना आसान नहीं है। कार्रवाई होती है तो विरोध होने लगता है, बाज़ार बंद हो जाती है। क्योंकि छोटे स्तर पर, बहुत ही छोटे स्तर पर वे बहुत ही ज़्यादा संगठित हैं। आपको मैं पालिका की मिसाल देता हूँ, क्या अभी आपने सुना कि कोई आदमी पालिका में मास कॉपियों के साथ पकड़ा गया? आप नहीं सुन सकते क्योंकि यहाँ ये कॉपीइंग नहीं होती, इसीलिए दिल्ली में किसी को मास कॉपींग करते हुए पकड़ा गया, आप ऐसा नहीं सुनते। ज़्यादा से ज़्यादा आप सुन सकते हैं कि कोई आदमी कुछेक हज़ार कॉपियों के साथ पकड़ा गया या नहीं तो इतनी कॉपियाँ ही पकड़ी गयीं। मैं समझ सकता हूँ कि अगर ऐसी तीस-चालीस हज़ार कॉपियाँ नहीं मिलती तो लोग कह सकते हैं कि देखो ये तो एक छोटे पैमाने पर चलने वाला धंधा है। लेकिन जिस तरह से बाज़ार फल-फूल रहा है उससे लगता है कि इसका अस्तित्व तो है। आप देखते हैं कि मुनाफ़ा तो है। आपको इसे दो नज़रिए से देखना होगा, एक मुनाफ़े के हिसाब से और दूसरा बल्क कॉपीइंग (थोक में कॉपियाँ बनाने) के लिहाज़ से। बल्क कॉपीइंग के अपने फ़ायदे हैं। एक आदमी जो महीने में 1500 कॉपियाँ बना रहा है, न तो वो हाईटेक हो सकता है और न ही उसे बहुत ज़्यादा मुनाफ़ा होगा। अच्छी क्वालिटी के लिए ज़रूरी इक्विपमेंट तो वही आदमी ख़रीद सकता है जो 30 हज़ार कॉपियाँ बना रहा है क्योंकि उसकी मात्रा बहुत ज़्यादा है। कुछ पाइरेटेड कॉपियाँ, जैसे किसी बढ़िया फ़िल्म की वीडियो सीडी आपको पचास से सौ रुपए में मिल सकती है। इसमें सब कुछ शामिल है, वीडियो की लागत, सीडी कवर की लागत, प्लास्टिक की लागत, प्रिंटिंग की लागत, साथ ही कॉपीइंग की लागत, और ओरिजनल कॉपी हासिल करने की लागत। और कुछ ऐसी कॉपियाँ तो वाक़ई अच्छी होती हैं।

आजकल तो मशीन की क़ीमत महज़ चार हज़ार रुपए हैं, और क्योंकि कॉपीइंग डिजिटल होती है ऐनालाग नहीं, इसलिए यह वास्तविक रेप्लिका (प्रतिकृति) होती है, और तब यह सिर्फ़ इन-ले कार्ड की कलर फ़ोटो कॉपी की लागत जितना ही रह जाता है ...

देखिए मैं आप से एकदम असहमत नहीं हूँ। कहने का मतलब यह नहीं कि छोटे खिलाड़ी कापीइंग नहीं

कर रहे। यह तो हो ही रहा है लेकिन हम कह सकते हैं कि ये पाइरेसी की कुटीर-उद्योग है। पाइरेसी और ख़ास तौर से वीडियो रिकॉर्डिंग के क्षेत्र में ढेर सारे लघु उद्योग हैं। आख़िर तो 1980 के दशक में मीडिया म्यूज़िक से संबंधित रिकार्डिंग परंपरागत रूप से शुरू हुई जिसका इतिहास अच्छी तरह दर्ज है। और इसकी शुरुआत भी एक छोटे लघु उद्योग के ही रूप में तब हुई जब लोगों ने सिंगापुर, हॉङ्गकॉङ्ग से मशीनें ला कर बड़े पैमाने पर कॉपी करना शुरू किया और रातों-रात इस इंडस्ट्री का चेहरा बदल गया। एक समय ऐसा भी था जब 'एचएमवी', 'पॉलीडार', 'रामफंग' जैसे बड़े-बड़े सूरमा भी इस क्षेत्र में थे। ये हिन्दुस्तानी कंपनियाँ और एक विदेशी कंपनी जिसका नाम अभी मुझे याद नहीं आ रहा है, ये सब रातों-रात साफ़ हो जाते हैं। मैं समझता हूँ कि, यह व्यापार का एक दूसरा सिरा है। अपने व्यक्तिगत अनुभव से मैं ये कह सकता हूँ कि इस व्यापार का एक और सिरा भी है लेकिन हम उस तक पहुँच नहीं पाते हैं। और यहीं मैं एक और बात भी जोड़ना चाहूँगा, ज़रा हमारे उन छापों (रेड्स) के पैटर्न भी देखिए।

अगर हम रेड्स, तलाशी और ज़ब्ती के पैटर्न को देखें तो क्या आप कोई भी ऐसी रेड बता सकते हैं जो छोटे-मोटे 'इस्टैब्लिशमेंट' से आगे जाती हो - एक प्रिंटिंग मशीन यहाँ तो दो डिजिटल कॉपियाँ कहीं वहाँ। क्या आप एक भी ऐसा आदमी जानते हैं जो 'लार्ज स्केल इस्टैब्लिशमेंटस' तक पहुँचा हो। अगर मार्केट में इनकी तादाद देखें, तो साफ़ पता चलता है कि भारी मात्रा में नक़ली कॉपियाँ मौजूद हैं। आप औद्योगिक क्षेत्रों में छापे क्यों नहीं मारते जहाँ मेरी समझ है कि ये सब होता है! क्या आपने कभी किसी पर जुर्म साबित होते देखा है, क्योंकि मैंने खुद हाई कोर्ट में आने वाले जमानत के मामलों के अलावा किसी पर जुर्म साबित होता नहीं देखा है।
ज़्यादातर मामलों में अदालत के बाहर समझौता हो जाया करता है। शायद ही कोई मामला अंतिम चरण तक पहुँचता हो। और अगर मामला 'सेट्ल' न भी हो तो ज़्यादातर मामलों में शिकायत करने वाले खुद ही दु:खद रूप से अपनी रुचि खो देते हैं। मैं आपको एक कलाकार, लेखक का उदाहरण देता हूँ। उसके काम के संबंध में एक मुक़दमा दाख़िल किया गया लेकिन दोनों में से किसी को भी कोर्ट में ब्यान देने के लिए लाने की तमाम कोशिशें नाकमयाब रहीं। अब एक दूसरे वकील साहब का फ़ोन आता है और वो कहते हैं कि भाई साहब वो फ़लाँ साहब को मजिस्ट्रेट ने सम्मान ज़ारी कर दिया है और वो कोर्ट नहीं जाना चाहते हैं, तो आप किसी को भेज दीजिए मैं भी अपने किसी सहकर्मी को भेज देता हूँ। जब ये लोग कोर्ट पहुँचे तो जज ने कहा - कि इतने सम्मन के बावजूद ये आदमी कोर्ट में हाज़िर नहीं हुआ, ये मुक़दमा ज़ारी रखना चाहता है कि नहीं? अब तथ्यत: उसको मुक़दमे के लिए हाज़िर रहने की ज़रूरत नहीं है ...

कोई भी मुक़दमें में दिलचस्पी नहीं लेना चाहता। ज़्यादातर लोग मुक़दमा कर तो देते हैं लेकिन बहुत कम ही लोग इसे गंभीरता से लेते हैं। अब तो बौद्धिक संपदा मामले के बहुत ही मशहूर वकीलों का एक समूह यह कहता है कि मुक़दमा मत करो। मैं उनका ये तर्क नहीं समझ पाता।

लेकिन वे ऐसा क्यों कह रहे हैं?

मैं तो नहीं समझ पाता, लेकिन मैं सोचता हूँ कि फौज़दारी मुक़दमों में तो हर स्तर पर आपका मौजूद होना ज़रूरी होता है लकिन अगर आप एक दिवानी मुक़दमा करते हैं तो आपकी जगह कोई और भी हाज़िर हो सकता है। मामला चलता रहता है, आपको चिंता करने की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं होती है। सालों साल मुक़दमा चलता है और कुछ नहीं होता। लेकिन फौज़दारी मामले में जब तक आपको

'व्यक्तिगत हाज़िरी' से मुक्त नहीं किया जाता है आपको सुनवाई की हर तारीख़ पर अदालत में ख़ुद मौजूद रहना होता है। मैजिस्ट्रेट की अदालत में हाज़िर होने के तथ्य के चलते आपको सबसे पहले तो मुक़दमे से मुताल्लिक़ जमानत या अग्रिम जमानत के लिए भागमभाग करनी पड़ती है। इससे परेशानी होती है। अपमान महसूस होता है कि आपका नाम काग़जों पर है। अगर आप को पासपोर्ट चाहिए या फिर आप को किसी कंपनी से डायरेकटर का पद मिल रहा हो तो ये सारे मुद्दे जो फौज़दारी मुआमले से जुड़े हैं, आपके ख़िलाफ़ दबाव बना देते हैं और इसीलिए लोग जल्द से जल्द इनको हल करने की कोशिश करते हैं। इसीलिए जैसा मैं पहले भी कह रहा था ज़्यादातर फौजदारी मामलों में हल निकल आता है, और पिछले दिनों इनमें से कुछ मामलों में मुक़दमा बेकार साबित हुआ। यह बहुत दु:खद स्थिति है लेकिन ऐसा ही है ...। आपको तो पता ही है कि मुक़दमों में ट्रेडमार्क ऐक्ट और कॉपीराइट ऐक्ट, इन दोनों क़ानूनों का प्रयोग किया जाता है। दोनों ही क़ानून 'टेक्निकल' हैं। मुश्किल नहीं लेकिन काफ़ी हद तक 'टेक्निकल'। जहाँ तक सिनेमैटोग्राफ़ फ़िल्मों का मामला है तो 1996 में सुप्रीम कोर्ट ने एक मामला तय किया जो 'नागोती केस' के रूप में जाना जाता है, इसके अनुरूप मुक़दमों को तय करना आसान हो जाता है। लेकिन किसने पढ़ा उस फ़ैसले को? हाल में गठित हुए अलग बौद्धिक संपदा प्रकोष्ठ से तक पुलिस अधिकारियों को ठीक-ठीक पता भी नहीं था इस क़ानून के बारे में। ये ख़ास तरह के क़ानून हैं इनके लिए ख़ासे प्रशिक्षण की दरकार है। हलाँकि एसीपी रैंक के अधिकारी अकसर ख़ुद से ही पढ़ा-लिखा करते हैं लेकिन निचले स्तरों पर लोगों में वो अपेक्षित ज्ञान भी नहीं है, जो मेरे हिसाब से मामलों की छान-बीन के लिए ज़रूरी होती है। जाँच-पड़ताल कर रहे अधिकारियों का रवैया आम तौर पर यह होता है कि अगर कहीं पाँच या सात जगहों पर पाइरेसी हो रही है तो अपना काम आसान बनाने के लिए अलग-अलग प्राथमिकी दर्ज करने और सब पर अलग-अलग मुक़दमा चलाने के बजाय वो एक चेन (कड़ी) बना लेते हैं। कहने का मतलब यह है कि अगर क, ख, ग, घ, और ड. अलग-अलग लोग हैं और तो ज़रूरी नहीं कि सारे लोग एक दूसरे के साथ मिल कर यह काम कर रहे हों। लेकिन जाँच अधिकारी 'इविडेंस ऐक्ट' की धारा 27 के तहत ही उनके ब्यान दर्ज करेंगे। धारा 27 के तहत दर्ज किए गए बयान 'डिस्कलोज़र स्टेटमेंट' होते हैं जिन्हें जाँच अधिकारी सादे काग़ज पर दर्ज करते हैं। सादे पन्ने पर लोगों के छह या सात लोगों के दस्तख़त! ऐसे ढ़ेरों मामले हैं। त्रासदी यह है कि 'डिस्कलोज़र स्टेटमेंट' के अलावा कोई और दूसरा साक्ष्य नहीं होता है लिहाज़ा ऐसे मामले भहरा कर गिर पड़ते हैं।

मैं अपने पूरे जीवन में आज तक यह नहीं समझ पाया कि क्यों हम इस कड़ी के बीच में से किसी शख़्स को इस्तेमाल करते हुए उस स्रोत को पकड़ने की कोशिश नहीं करते हैं। और इस कड़ी के बीच के शख़्स को इक़बाली गवाह बना कर और उससे ब्यान दिला कर मुक़दमों में मदद क्यों नहीं ली जाती है। ज़्यादातर फ़रियादियों की दिलचस्पी 'जमानत' तक ही होती है, या कहें कि ज़्यादातर फ़रियादियों के वकील जमानत और 'रिमाण्ड' तक ही दिलचस्पी लेते हैं क्योंकि इस चरण तक सब कुछ काग़जों पर बिखरा होता है, और यहीं आप रचते हैं यह 'पुचकार और मार' का संसार। पड़ताल के दौरान एक बार ऐसा हो जाने के बाद पड़ताल में रुचि धीरे-धीरे ख़त्म हो जाती है। उसके बाद एकमात्र कार्यवाही जिस पर सब की नज़र होती है वह होती है सामानों की ज़ब्ती या ज़ब्त सामानों या मशीनरी मुक्ति। यानी दिलचस्पी कॉपीराइट अधिनियम की धारा 64 और मुझे लगता है कि ट्रेडमार्क अधिनियम की धारा 115 के तहत सुपरदारी पर सामानों और मशीनरी को छुड़वाने के अलावा और किसी चीज़ में लोगों की दिलचस्पी रह नहीं जाती है। लेकिन मुझे लगता है कि अगर पड़ताल के दौरान फरियादी थोड़ी ज़्यादा ले तो कहीं ज़्यादा सफल कार्यवाहियाँ संभव हैं।

इस मुल्क में ज़्यादातर दोष सिद्ध ही नहीं होता क्या ऐसा सिर्फ़ इसलिए है कि दोष सिद्ध होने की दर बहुत ही कम है ...

मैं समझता हूँ कि बौद्धिक संपदा अधिकारों के मामलों में दोष सिद्ध न होना विशेष तौर से इसलिए होता है क्योंकि

* समझौते इस तरह से हो जाते हैं कि मामला आगे बढ़ते ही नहीं पाता
* फरियादी में रूचि की कमी के चलते भी

एक और कारक जिसकी अकसर चर्चा भी नहीं होती वह यह है कि ज़्यादातर कलाइन्ट/फ़रियादी जो पाइरेसी से परेशान होते हैं, वे अपने प्रतिनिधियों को फ़रियादी या गवाह के रूप में खड़ा करना नहीं चाहते। इसलिए होता ये है कि 'लीगल टीम', जो जाँच-पड़ताल करने वाली टीम होती है, बाद में एक पावर ऑफ़ अटॉर्नी या रीजोल्यूशन के ज़रिए फरियाद करती है। इसमें सुनवाई तक ढेर सारे बदलाव हो चुके होते हैं, लोग चले गए होते हैं, लोगों का स्थानांतरण हो चुका होता है। ढेर सारे मामलों में लोगों के चले जाने के चलते कोई इन मामलों को देखने वाला नहीं होता है। कुछ ऐसी कंपनियाँ है, मैं आपको एकाध नाम भी बता सकता हूँ, जैसे 'हिन्दुस्तान लीवर्स'। 'हिन्दुस्तान लीवर्स' का बहुत मज़बूत लीगल प्रेज़ेन्स है। एक बड़ी मज़बूत लीगल टीम उनके पास है। उनकी अपनी रुचि है, वे बार-बार मुक़दमे करते हैं और इसमें दिलचस्पी रखते हैं क्योंकि उद्योग में में वो हैं उनको लगता है कि ऐसे मुक़दमों बार-बार किए जाने की ज़रूरत है नहीं तो ज़्यादातर लोग तो ...

सिनेमा के लिए ...?

सिनेमा, हाँ एम पी ए ए (डच।) फ़ॉलो अप करता है। लेकिन मुझे पता नहीं कि ऐसे कितने मुक़दमें आख़िरी तौर पर सफल होंगे क्योंकि या तो ऐसे मामले अदालत के बाहर समझौते के रूप में ख़त्म हो जाते हैं और हाईकोर्ट में मामले को रद्द करने के लिए एक याचिका डाल दी जाती है या फिर एक दूसरा तरीक़ा यह है कि अगर रद्द करने के लिए याचिका नहीं भी डाली गई है जो कि ज़्यादातर हुआ भी करता है, कि अगर दोष अपनी गलती स्वीकार कर लेता है और अगर वह थोड़े आर्थिक दंड की भरपाई कर के छुट जा सकता है तो छोटे-मोटे अपराध के लिए ऐसा करके अगर संभव हो वह छुट जाता है। अंतिम तौर पर जैसा मैंने पहले भी कहा फ़रियादी ही दिलचस्पी खो बैठता है।

एक और समस्या जिसके बारे में मुझे एक ऐसे व्यक्ति से पता चला जो स्वयं एक इनफ़ोर्सर (लागू कराने वाले) के तौर पर काम करता है वह यह कि पावर ऑफ़ एटॉर्नी होल्डर का फ़ील्ड में जीवन महज़ लगभग दो सालों का होता है। और क्योंकि इसके बाद आप को तमाम जगहों पर भी कोर्ट में मौजूद रहने के लिए लगातार यात्राएँ करनी पड़ती हैं जिससे एक जाँचकर्ता के रूप में आपका जीवन लगभग ख़त्म हो जाता है?

सवाल यह है कि अगर आप एक पावर ऑफ़ एटॉर्नी लेते हैं और उस वकील, जो आपको निर्देशित कर रहा है, उसकी सलाह के साथ लेते हैं तो आप इसे इस समझदारी के साथ लेते हैं कि आपको अदालती काम भी करना होगा। ऐसा नहीं है कि आप अदालती काम नहीं करेंगे। ध्यान रखिए कि ऐसे मामलों को छोड़ कर, जहाँ लोग निजी शिकायतें करते हैं और इसी रूप में यानी निजी शिकायत के रूप में इन्हें मेनटेन करते हैं, दूसरे सभी मामलों में जहाँ भी पुलिस कार्यवाहियाँ होती है, पावर ऑफ़ अटॉर्नी धारकों को महज़ इविडेंस के लिए ही जाना पड़ता है और वो भी रोज़ नहीं बलिक कभी एकाध बार या हो सकता है किसी मामले में दो तीन तारीख़ों पर। इसलिए यह कहना कि पावर ऑफ़ अटॉनी

धारक मुक़दमेबाज़ी के दौरान धराशायी हो जाता है – पूरी तरह सहीं नहीं है। एक सफल मुक़दमे के लिए, मुकदमें की शरुआत से लेकर सुनवाई पूरा होने तक फ़रियादी को लगातार सहयोग करना होता है; अब क़ानून को इस सहयोग की ज़रूरत नहीं है, लेकिन तथ्य यह है कि इस तरह के टेक्निकल अपराधों में उनका सहयोग इसलिए भी ज़रूरी होता है कि कुछ हद तक सफलता हासिल की जा सके।

इन इनफ़ोर्सरों, इन भूतपूर्व पुलिस अधिकारियों की भूमिका के बारे में आपको क्या लगता है जिनका काम एक तरफ़ तो इन मामलों पर क़ानूनी कार्रवाई करना होता है और दूसरी तरफ़ पावर ऑफ़ अटॉर्नी के प्रधिकार को काम में लाना?

आपके पास बौद्धिक संपदा अधिकारों को लागू करने के दो तरीक़े हैं, पहला तो यह कि वितरण छोड़ कर कई सारी कार्यवाहियाँ की जा सकती हैं मिसाल के तौर पर जैसा 'हिन्दुस्तान लीवर्स' जैसी कंपनियाँ करती हैं। पूरे साल ये कंपनियाँ खुदरा विक्रेताओं और वितरकों पर कई एक कार्यवाहियाँ करती हैं। जिसका मतलब यह हुआ कि ये ऐसे लोगों को बाँधे रखती हैं और इसके लिए देश भर में बड़े पैमाने पर कार्यवाहियाँ करती हैं और इस तरह से ये लोगों को रोके रखती हैं। लेकिन 'हिन्दुस्तान लीवर्स' ऐसा करने में इसलिए सक्षम हो पाती है क्योंकि इसके पास परंपरागत रूप से, और आज भी हिन्दुस्तान की एक सबसे बेहतरीन और सक्षम लीगल टीम है। वे हक़ीक़त में इस बात की कोशिश करते हैं कि उनके अधिकारों का हनन न हो पाए और वे लगातार इसके लिए कोशिश करते हैं। ऐसा नहीं कि साल में एक बार ऐसा करते हों और बाक़ी समय सोते रहते हों। मेरा अपना मानना है कि जैसे-जैसे हिन्दुस्तान में और बहुत सी कंपनियाँ आएँगी, और इनके आने से मेरा मतलब ये नहीं है कि उनका सिर्फ़ संपर्क के लिए यहाँ एक दफ़्तर होगा बल्कि वे हिन्दुस्तान में आएँगी और यहाँ काम करना शुरू करेंगी तब उनको ये समझ में आयेगा कि उनको अपने अधिकारों को ज़्यादा मज़बूती और निरंतरता से लागू करना होगा। क्योंकि कम से कम मैं तो यही मानता हूँ कि पाइरेसी के दो बड़े बाज़ार हिन्दुस्तान और चीन हैं। पाइरेसी क़ानूनों को लागू करने के लिए चीन बहुत अच्छी जगह नहीं लगती है जबकि हिन्दुस्तान, जिसके क़ानूनी प्रणाली का थोड़ा-बहुत सम्मान पूरी दुनिया में हैं – एक कहीं ज़्यादा बेहतर विकल्प नज़र आता है। मुझे लगता है कि हिन्दुस्तान आने वाली कंपनियों की तरफ़ से, ऐसी कंपनियों की तरफ़ से जो हिन्दुस्तान में सक्रिय होने वाली हैं, बहुत ज़्यादा दबाव पड़ने वाला है। आप देख सकते हैं कि हिन्दुस्तान में कई सारी कंपनियाँ हैं लेकिन ये कंपनियाँ हिन्दुस्तानी बाज़ारों में बिक्री को लेकर बहुत ज़्यादा सक्रिय नहीं है, या कहें कि वे बिना पाइरेसी पर ध्यान दिए ख़ूब मुनाफ़ा बटोर रही हैं। लेकिन हमेशा यही स्थिति नहीं रहने वाली है। लोग समानांतर बाज़ारों की तरफ़ भी देखना शुरू करेंगे, पाइरेसी बाज़ार की तरफ़, और तब कहीं ज़्यादा संगठिन रूप से इन्हें पाइरेसी से मुक़ाबले में भी उतरना पड़ेगा जैसा अभी महानगरों में हो रहा है।

आपको पता है कि परंपरागत तौर पर हमारे यहाँ सीबीआई, अपराध शाखा, या सीआइडी थी जिसका अब एक विशेष सेल है जिसे आर्थिक अपराध शाखा दिल्ली, बंबई कहते हैं। मुझे पता चला है कि बैंगलोर तथा दो-एक और शहरों में यह शाखा है। और मुझे यह भी बताया गया है कि अब एक एसीपी रैंक का अधिकारी ज़्यादातर जगहों पर बौद्धिक संपदा अधिकार शाखा का प्रभारी होता है। दिल्ली में, यही एसीपी साइबर अपराध और बौद्धिक संपदा अधिकार, दोनों देखते हैं। साइबर अपराध एक ऐसा क्षेत्र है जो बढ़ेगा और काफ़ी फैलेगा। लेकिन इससे यह भी पता चलता है कि खोज़बीन करने वाली एजेंसियों का भी फ़ोकस बदल चुका है। कुछ साल पहले तक बौद्धिक संपदा अधिकारों से जुड़े मामले देखने के लिए सीबीआई तक कि अपनी कोई अलग शाखा नहीं हुआ करती थी और आज इनकी अपनी एक शाखा है। यह बौद्धिक संपदा अधिकार शाखा इस अनुभव का नतीजा है कि ढेरों ऐसे भी अपराध हैं जो कई राज्यों में होते हैं। सामानों का स्रोत कोई एक राज्य है (ी आवा-जाही आर्टिकल की सोर्सिंग

एक स्टेट में होती हैं) तो इसका उत्पादन किसी अन्य राज्य में किया जाता है, वितरण तीसरे स्टेट से होता है और असंभव नहीं कि किसी चौथे राज्य से इसे निर्यात किया जा रहा हो। इसीलिए एक अख़िल भारतीय एजेंसी की ज़रूरत थी जो पूरे हिन्दुस्तान में इस पर नज़र रख सके। एक से दूसरे राज्य में जा सके और वो भी बिना किसी रोक-टोक के, बिना किसी स्थानीय या क्षेत्रिय प्राधिकरण से मंजूरी लिए। क्योंकि स्थानीय क्षेत्रीय प्राधिकरण का अधिकार क्षेत्र सीमित होता है और एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने के लिए आवश्यक इनफ़्रास्ट्रक्चर भी इनके पास नहीं होता है, इन्हें स्थानीय पुलिस की मदद लेनी पड़ती है और स्थानीय पुलिस इन मामलों में प्राय: कुछ ख़ास मददगार साबित नहीं होती है। क्योंकि पाइरेसी ज़्यादातर चुनिंदा इलाक़ों से होती है और इन इलाक़ों का चुनाव भी इनकी लोकेशन की वजह से ही किया गया होता है। यही इलाक़े होते हैं जहाँ अपराध बहुतायत से होते हैं और जिन भी वजहों से लेकिन पुलिस का प्रभाव नहीं होता।

आर्थिक अपराध शाखा में बौद्धिक संपदा अधिकारों से जुड़े मामलों को देखने वाली टीम कितनी बड़ी है?

मैं समझता हूँ कि दिल्ली की आर्थिक अपराध शाखा में लगभग आठ-दस लोग हैं। सीबीआई के बारे में मुझे जानकारी नहीं है लेकिन इसमें एक एसपी रैंक के अधिकारी हैं और उनके मातहत कम से कम पंद्रह से बीस लोग तो होंगे ही ...

डी आर आई ऐसे मामले नहीं देखता?

उत्तर: डी आर आई रिवेन्यू इंटेलिजेंस के मामले देखता है मुख़्यत कस्टम्स, और एक्साइज़ के।

लेकिन आज कल तो मादक पदार्थों (नारकोटिक्स) से जुड़े मामलों में भी उनका ख़ूब नाम है?

उत्तर: डी आर आई बहुत सीमित है। वे कस्टम्स, एकसाइज़, नारकोटिक्स, फ़ॉरेन एक्सचेंज वायलेशन जैसे मामले देखते हैं। आख़िरकार बौद्धिक संपदा क़ानूनों को लागू करने का क्या मतलब है? इसका मतलब कंपनियों को ज़्यादा मुनाफ़ा हासिल करने में मदद करना है। इसलिए व्यापार और क़ानून या क़ानूनी कार्यवाहियों को क़दम से क़दम मिला कर चलना होगा। जहाँ कहीं कंपनियों के 'लीगल ऑफ़िसर' या 'लीगल डिपार्टमेंट' वकीलों, 'मार्केटिंग' और 'सेल्स' से जुड़े लोगों को साथ लेकर चलते हैं वहाँ उन्हें सफलता मिलती हैं। परेशानी ये है कि अकसर क़ानूनी कार्यवाहियाँ बग़ैर ऐसे लोगों की पर्याप्त भागीदारी और हवाले के हुआ करती है जो 'मार्केटिंग' और 'सेल्स' से जुड़े होते हैं। क्योंकि 'सेल्स' और 'मार्केटिंग' से जुड़े लोग ही वास्तव में आपको ये बता सकते हैं कि उन्हें कहाँ नुकसान हुआ है, कम से कम जहाँ वे जानते हैं। वो आपके सबसे बेहतर पड़ताल करने वाले हो सकते हैं। हो सकता है कि आप उनका इस्तेमाल न कर पाएँ क्योंकि उनकी अपनी सीमाएँ होती हैं, उनको फिर से उन्हीं बाज़ारों में जाना होता है लेकिन जब तक आप इन संसाधनों का इस्तेमाल नहीं करते हैं आप ज़रूरी कार्यवाहियाँ नहीं कर पाएँगे। और ऐसा भी नहीं कि मास स्तर पर बिक्री या नक़लनबीसी से संबंधित आँकड़े बाज़ार में मौजूद नहीं है, आँकड़े मौजूद हैं, ये उन कंपनियों के पास ही है, अकसर उन कंपनियों के पास जिनकी हिन्दुस्तानी में एक मज़बूत उपस्थिति है। ये आँकड़े उन्हीं कंपनियों और उनके अधिकारियों के पास ही मौजूद हैं लेकिन न मालूम किन वज़हों से मेरी निगाह में इनको लेकर जैसी कार्यवाहियाँ होनी चाहिए वैसी नहीं होती, याने पर्याप्त कार्यवाहियाँ नहीं होतीं।

अनुवाद: कमल कुमार मिश्रा